समाजशास्त्र की परिभाषा (Definition of Sociology)

समाजशास्त्र की अनेक परिभाषाएँ दी गयी हैं।

जिन्सबर्ग (M. Ginsberg) के अनुसार—
"समाजशास्त्र व्यापक अर्थ में मानवीय अन्तः सम्बन्धों एवं अन्तः क्रियाओं, उनकी अवस्थाओं एवं परिणामों का अध्ययन है।"

लेस्टर एफ० वार्ड (L.F. Ward) के अनुसार—
"यह समाज का अथवा सामाजिक घटनाओं का विज्ञान है।"

कुछ अन्य समाजशास्त्रियों ने सामाजिक सम्बन्धों से अधिक सामाजिक व्यवहार पर बल दिया है।

पार्क एवं बर्गेस के अनुसार—
"समाजशास्त्र सामूहिक व्यवहार का विज्ञान है।"

आर० एम० मैकाईवर (R.M. Maciver) ने सामान्य तौर पर समाजशास्त्र को सामाजिक सम्बन्धों का विज्ञान कहा। इस विज्ञान का विस्तृत परिचय देते हुए कहते हैं कि समाजशास्त्र सामाजिक संरचना में एकता और व्यवस्था के सूत्रों के खोज को चेष्टा करता है, एक निश्चित परिवेश में इस संरचना का जन्म एवं विकास किस प्रकार होता है उसे समझने की कोशिश करता है तथा सामाजिक संरचनाओं के गतिशील सन्तुलन को एवं इनमें होने वाले परिवर्तनों की दिशा और उसके चरित्र को समझने का प्रयास करता है।

इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि समाजशास्त्र एक विशेष विज्ञान के रूप में जहाँ दूसरे विज्ञानों

से व्यापक है वहीं इसकी अपनी विशिष्ट विधियाँ भी हैं। मानव एक सामाजिक जीव है एवं अपनी सामाजिकता के कारण जिन सम्बन्धों और संरचनाओं को वह विकसित करता है उसका अध्ययन समाज-शास्त्र करता है। यदि हम विस्तार में जाएँ तो यह कह सकते हैं कि सामाजिक सम्बन्धों के अनेक स्वरूप हैं जैसे - परिवार, जाति, वर्ग, गाँव, शहर इत्यादि। निश्चित रूप से इन सम्बन्धों को निर्देशित करने के नियमों, आदर्शों, प्रथाओं, मूल्यों, जनरीतियों आदि अनेक संस्थात्मक स्वरूपों की आवश्यकता होती है। समाजशास्त्र की भाषा में ये संस्कृति के नियामक आधार हैं एवं यह भी समाजशास्त्र का मुख्य विषय है।

सामाजिक सम्बन्धों, इनके अनेक स्वरूपों के साथ-साथ सामाजिक प्रक्रियाओं का अधिक महत्व है। यद्यपि अपने मूल रूप में ये प्रक्रियाएँ सहयोग, व्यवस्थापन, प्रतियोगिता और द्वन्द की होती हैं परन्तु समाज में एक व्यापक सन्दर्भ में तीन प्रक्रियाओं का बड़ा महत्व है। प्रथम प्रक्रिया समाजीकरण की है जिसके द्वारा एक शिशु अपने समाज का सदस्य बनता है। अपने समूह के नियमों, मूल्यों और संस्थाओं को सिखता है। सारांश यह है कि जैविक इकाई से एक सामाजिक इकाई में बदलता है। यह प्रक्रिया एक मौलिक प्रक्रिया है एवं इसके कारण समाज में समरूपता पैदा होती है। इसी तरह की एक दूसरी प्रक्रिया

सामाजिक नियन्त्रण की है। समाजशास्त्र की मान्यता है कि नियमों का मानना जितना स्वाभाविक है, नियमों का टूटना भी उतना ही स्वाभाविक है। मानव समाज सर्वदा ही नियमों के टूटने की प्रवृत्ति और टूट को रोकने के लिए उपाय करता रहा है। इन्हीं के फलस्वरूप धर्म की उत्पत्ति हुई, कानून की उत्पत्ति हुई, भिन्न-भिन्न नियन्त्रण सम्बन्धी नियम बने। स्वभाविक रूप से समाजशास्त्र समाजिक नियन्त्रण की प्रक्रिया का अध्ययन करता है। धर्म, कानून, रूढ़ियाँ, प्रथाओं, मूल्यों, परिवार, पड़ोस, समुदाय आदि का सामाजिक नियंत्रण के उपकरणों के रूप में अध्ययन करता है।

समाजशास्त्र की यह निश्चित मान्यता है कि विश्व के तमाम चीजों के समान समाज भी परिवर्तनशील है। समाजशास्त्र पर तो आरम्भ से ही डार्विनवादी विकासवादियों का प्रभाव रहा है एवं विकास की चर्चा अलग-अलग रूप से लगभग सभी समाजशास्त्रीयों ने की है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया इसका एक मुख्य विषय है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण चर्चा का विषय तो यही है कि परिवर्तन क्यों होता है? फिर यह कि किस क्रम में इसका परिवर्तन होता है और फिर यह कि परिवर्तन के परिणाम क्या होते हैं?

आधुनिक समाजशास्त्र में समाज के उन पक्षों का अध्ययन महत्वपूर्ण बन गया है जो अपनी व्यापकता के कारण एक विस्तृत समाज के लक्षणों का ही बोध कराते हैं एवं जो किसी न किसी

रूप से समाज के एक मौलिक आवश्यकता से जुड़े होते हैं। समाज के ये पक्ष हैं — अर्थव्यवस्था का पक्ष, राजनीतिक व्यवस्था का पक्ष, परिवार और नातेदारी का पक्ष तथा संस्कृति और धर्म का पक्ष। समाजशास्त्र का मूल केन्द्र सामाजिक सम्बन्ध ही है। परन्तु यह अर्थव्यवस्था राजनीति, धर्म और सामाजिक नातेदारी के सामाजिक आधारों की खोज करता है एवं इनके सामाजिक पक्षों का विश्लेषण करता है। इस अर्थ में यह राजनीतिशास्त्र से एकदम ही अलग विषय है।

इस प्रकार समाजशास्त्र संक्षेप में समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है। सामूहिक सम्बन्धों और सामूहिक जीवन पर विशेष बल के कारण जॉन्सन (H. M. Johnson) ने इसे समूहों के वैज्ञानिक अध्ययन भी कहा है।